मन्त्रद्रष्टा ऋषि

मन्त्रद्रष्टा महर्षि विश्वामित्र

पुरुषार्थ, सच्ची लगन, उद्यम और तपकी गरिमाके रूपमें महर्षि विश्वामित्रके समान शायद ही कोई हो। इन्होंने अपने पुरुषार्थसे, अपनी तपस्याके बलसे क्षत्रियत्वसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया, राजर्षिसे ब्रह्मर्षि बने, देवताओं और ऋषियोंके लिये पूज्य बन गये और उन्हें सप्तर्षियोंमें अन्यतम स्थान प्राप्त हुआ। साथ ही सबके लिये वे वन्दनीय भी बन गये। इनकी अपार महिमा है।

इन्हें अपनी समाधिजा प्रज्ञासे अनेक मन्त्रस्वरूपोंका दर्शन हुआ, इसलिये ये 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि' कहलाते हैं। ऋग्वेदके दस मण्डलोंमें तृतीय मण्डल, जिसमें ६२ सूक्त हैं, इन सभी सूक्तों (मन्त्रोंका समूह)-के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र ही हैं। इसीलिये तृतीय मण्डल 'वैश्वामित्र-मण्डल' कहलाता है। इस मण्डलमें इन्द्र, अदिति, अग्निपूजा, उषा, अश्विनी तथा ऋभु आदि देवताओंकी स्तुतियाँ हैं और अनेक ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म आदिकी बातें विवृत हैं, अनेक मन्त्रोंमें गो-महिमाका वर्णन है। तृतीय मण्डलके साथ ही प्रथम, नवम तथा दशम मण्डलकी कतिपय ऋचाओंके द्रष्टा विश्वामित्रके मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्र हुए हैं।

वैश्वामित्र-मण्डलका वैशिष्ट्य

वैसे तो वेदकी महिमा अनन्त है ही, किंतु महर्षि विश्वामित्रजीके द्वारा दृष्ट यह तृतीय मण्डल विशेष महत्त्वका है, क्योंकि इसी तृतीय मण्डलमें ब्रह्म-गायत्रीका जो मूल मन्त्र है, वह उपलब्ध होता है। इस ब्रह्म-गायत्री-मन्त्रके मुख्य द्रष्टा तथा उपदेष्टा आचार्य महर्षि विश्वामित्र ही हैं। ऋग्वेदके तृतीय मण्डलके ६२वें सूक्तका दसवाँ मन्त्र 'गायत्री-मन्त्र' के नामसे विख्यात है, जो इस प्रकार है—'**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥**'

यदि महर्षि विश्वामित्र न होते तो यह मन्त्र हमें उपलब्ध न होता, उन्हींकी कृपासे—साधनासे यह गायत्री-मन्त्र प्राप्त हुआ है। यह मन्त्र सभी वेदमन्त्रोंका मूल है—बीज है, इसीसे सभी मन्त्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिये गायत्रीको 'वेदमाता' कहा जाता है। यह मन्त्र सनातन परम्पराके जीवनमें किस तरह अनुस्यूत है तथा इसकी कितनी महिमा है, यह तो स्वानुभव-सिद्ध है। उपनयन-संस्कारमें गुरुमुखद्वारा इसी मन्त्रके उपदेशसे द्विजत्व प्राप्त होता है और नित्य-संध्याकर्ममें मुख्यरूपसे प्राणायाम, सूर्योपस्थान आदिद्वारा गायत्री-मन्त्रके जपकी सिद्धिमें ही सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार यह गायत्री-मन्त्र महर्षि विश्वामित्रकी ही देन है और वे इसके आदि आचार्य हैं। अतः गायत्री-उपासनामें इनकी कृपा प्राप्त करना भी आवश्यक है। इन्होंने गायत्री-साधना तथा दीर्घकालीन संध्योपासनाकी तपःशक्तिसे काम-क्रोधादि विकारोंपर विजय प्राप्त की और ये तपस्याके आदर्श बन गये।

महर्षिने न केवल वैदिक मन्त्रोंके माध्यमसे ही गायत्री-उपासनापर बल दिया, अपितु उन्होंने अन्य जिन ग्रन्थोंका प्रणयन किया, उनमें भी मुख्यरूपसे गायत्री-साधनाका ही उपदेश प्राप्त होता है। 'विश्वामित्रकल्प,' 'विश्वामित्रसंहिता' तथा 'विश्वामित्रस्मृति' आदि उनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें भी सर्वत्र गायत्रीदेवीकी आराधनाका वर्णन दिया गया है और यह निर्देश है कि अपने अधिकारानुसार गायत्री-मन्त्रके जपसे सभी सिद्धियाँ तो प्राप्त हो ही जाती हैं। इसीलिये केवल इस मन्त्रके जप कर लेनेसे सभी मन्त्रोंका जप सिद्ध हो जाता है।

महामुनि विश्वामित्र तपस्याके धनी हैं। इन्हें गायत्रीमाता सिद्ध थीं और इनकी पूर्ण कृपा इन्हें प्राप्त थी। इन्होंने नवीन सृष्टि तथा त्रिशंकुको सशरीर स्वर्ग आदि भेजने और ब्रह्मर्षिपद प्राप्त करने-सम्बन्धी जो भी असम्भव कार्य किये, उन सबके पीछे गायत्री-जप एवं संध्योपासनाका ही प्रभाव था।

भगवती गायत्री कैसी हैं, उनका क्या स्वरूप है, उनकी आराधना कैसे करनी चाहिये, यह सर्वप्रथम आचार्य विश्वामित्रजीने ही हमें बताया है। उन्होंने भगवती गायत्रीको सर्वस्वरूपा बताया है और कहा है कि यह चराचर जगत् स्थूल-सूक्ष्म भेदसे भगवतीका ही विग्रह है, तथापि उपासना और ध्यानकी दृष्टिसे उनका मूल स्वरूप कैसा है—इस विषयमें उनके द्वारा रचित निम्न श्लोक द्रष्टव्य है, जो आज भी गायत्रीके उपासकों तथा नित्य संध्या-वन्दनादि करनेवालोंके द्वारा ध्येय होता रहता है—

गायत्रीमाताका ध्यान—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

(देवीभागवत १२। ३)

अर्थात् 'जो मोती, मूँगा, सुवर्ण, नीलमणि तथा उज्ज्वल प्रभाके समान वर्णवाले (पाँच) मुखोंसे सुशोभित हैं। तीन नेत्रोंसे जिनके मुखकी अनुपम शोभा होती है। जिनके रत्नमय मुकुटमें चन्द्रमा जड़े हुए हैं, जो चौबीस वर्णोंसे युक्त हैं तथा जो वरदायिनी गायत्री अपने हाथोंमें अभय और वर-मुद्राएँ, अंकुश, पाश, शुभ्रकपाल, रस्सी, शङ्ख, चक्र और दो कमल धारण करती हैं, हम उनका ध्यान करते हैं'।

इस प्रकार महर्षि विश्वामित्रका इस जगत्पर महान् उपकार ही है। महिमाके विषयमें इससे अधिक क्या कहा जा सकता है कि साक्षात् भगवान् जिन्हें अपना गुरु मानकर उनकी सेवा करते थे। महर्षिने सभी शास्त्रों तथा धनुर्विद्याके आचार्य श्रीरामको बला, अतिबला आदि विद्याएँ प्रदान कीं, सभी शास्त्रोंका ज्ञान प्रदान किया और भगवान् श्रीरामकी चिन्मय लीलाओंके वे मूल-प्रेरक रहे तथा लीला-सहचर भी बने।

क्षमाकी मूर्ति वसिष्ठके साथ विश्वामित्रका जो विवाद हुआ, प्रतिस्पर्धा हुई, वह भी लोकशिक्षाका ही एक रूप है। इस आख्यानसे गो-महिमा, त्यागका आदर्श, क्षमाकी शक्ति, तपस्याकी शक्ति, उद्यमकी महिमा, पुरुषार्थ एवं प्रयत्नकी दृढ़ता, कर्मयोग, सच्ची लगन और निष्ठा एवं दृढ़तापूर्वक कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। इस आख्यानसे लोकको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि काम, क्रोध आदि साधनाके महान् बाधक हैं, जबतक व्यक्ति इनके मोहपाशमें रहता है; उसका अभ्युदय सम्भव नहीं, किंतु जब वह इन आसुरी-सम्पदाओंका परित्याग कर दैवी-सम्पदाका आश्रय लेता है तो वह सर्वपूज्य, सर्वमान्य तथा भगवान्का प्रियपात्र हो जाता है। महर्षि वसिष्ठसे जब वे परास्त हो गये, तब उन्होंने तपोबलका आश्रय लिया, काम-क्रोधके वशीभूत होनेका उन्हें अनुभव हुआ, अन्तमें सर्वस्व त्याग कर वे अनासक्त पथके पथिक बन गये और जगद्वन्द्य हो गये। ब्रह्माजी स्वयं उपस्थित हुए, उन्होंने उन्हें बड़े आदरसे ब्रह्मर्षिपद प्रदान किया। महर्षि वसिष्ठने उनकी महिमाका स्थापन किया और उन्हें हृदयसे लगा लिया। दो महान् संतोंका अद्भुत मिलन हुआ। देवताओंने पुष्पवृष्टि की।

सत्यधर्मके आदर्श राजर्षि हरिश्चन्द्रका नाम कौन नहीं जानता? किंतु महर्षि विश्वामित्रकी दारुण परीक्षासे ही हरिश्चन्द्रकी सत्यतामें निखार आया, उस वृत्तान्तमें महर्षि अत्यन्त निष्ठुर-से प्रतीत होते हैं, किंतु महर्षिने हरिश्चन्द्रको सत्यधर्मकी रक्षाका आदर्श बनाने तथा उनकी कीर्तिको सर्वश्रुत एवं अखण्ड बनानेके लिये ही उनकी इतनी कठोर परीक्षा ली। अन्तमें उन्होंने उनका राजैश्वर्य उन्हें लौटा दिया, रोहिताश्वको जीवित कर दिया और महर्षि विश्वामित्रकी परीक्षारूपी कृपाप्रसादसे ही हरिश्चन्द्र राजासे राजर्षि हो गये, सबके लिये आदर्श बन गये।

ऐतरेय ब्राह्मण आदिमें भी हरिश्चन्द्रके आख्यान तथा शुनःशेपके आख्यानमें महर्षि विश्वामित्रकी महिमाका वर्णन आया है। ऋग्वेदके तृतीय मण्डलमें ३०वें, ३३वें तथा ५३वें सूक्तमें महर्षि विश्वामित्रका परिचयात्मक विवरण आया है। वहाँसे ज्ञान होता है कि ये कुशिक गोत्रोत्पन्न कौशिक थे (३। २६। २-३)। ये कौशिक लोग महान् ज्ञानी थे, सारे संसारका रहस्य जानते थे (३। २९। १५)। ५३वें सूक्तके ९वें मन्त्रसे ज्ञात होता है कि महर्षि विश्वामित्र अतिशय सामर्थ्यशाली, अतीन्द्रियार्थद्रष्टा, देदीप्यमान तेजोंके जनयिता और अध्वर्यु आदिमें उपदेष्टा हैं तथा राजा सुदासके यज्ञके आचार्य रहे हैं।

महर्षि विश्वामित्रके आविर्भावका विस्तृत आख्यान पुराणों तथा महाभारत आदिमें आया है। तदनुसार कुशिकवंशमें उत्पन्न चन्द्रवंशी महाराज गाधिकी सत्यवती नामक एक श्रेष्ठ कन्या हुई। जिसका विवाह मुनिश्रेष्ठ भृगुपुत्र ऋचीकके साथ सम्पन्न हुआ। ऋचीकने पत्नीकी सेवासे प्रसन्न होकर अपने तथा महाराज गाधिको पुत्रसम्पन्न होनेके लिये यज्ञिय चरुको अभिमन्त्रित कर सत्यवतीको प्रदान करते हुए कहा—'देवि! यह दिव्य चरु दो भागोंमें विभक्त है। इसके भक्षणसे यथेष्ट पुत्रकी प्राप्ति होगी। इसका एक भाग तुम ग्रहण करना और दूसरा भाग अपनी माताको दे देना। इससे तुम्हें एक श्रेष्ठ महातपस्वी पुत्र प्राप्त होगा और तुम्हारी माताको क्षत्रिय शक्तिसम्पन्न तेजस्वी पुत्र होगा।' सत्यवती यह दोनों चरु-भाग प्राप्तकर बड़ी प्रसन्न हुई।

अपनी श्रेष्ठ पत्नी सत्यवतीको ऐसा निर्देश देकर महर्षि ऋचीक तपस्याके लिये अरण्यमें चले गये। इसी समय महाराज गाधि भी तीर्थदर्शनके प्रसंगवश अपनी कन्या सत्यवतीका समाचार जानने आश्रममें आये। इधर सत्यवतीने पतिद्वारा प्राप्त चरुके दोनों भाग माताको दे दिये और दैवयोगसे माताद्वारा चरु-भक्षणमें विपर्यय हो गया। जो भाग सत्यवतीको प्राप्त होना था, उसे माताने ग्रहण कर लिया और जो भाग माताके लिये उद्दिष्ट था, उसे सत्यवतीने ग्रहण कर लिया। ऋषि-निर्मित चरुका प्रभाव अक्षुण्ण था, अमोघ था। चरुके प्रभावसे गाधिपत्नी तथा देवी सत्यवती—दोनोंमें गर्भके चिह्न स्पष्ट होने लगे।

इधर ऋचीक मुनिने योगबलसे जान लिया कि चरु-भक्षणमें विपर्यय हो गया है। यह जानकर सत्यवती निराश हो गयीं, परंतु मुनिने उन्हें आश्वस्त किया। यथासमय सत्यवतीकी परम्परामें पुत्ररूपमें जमदग्नि पैदा हुए और उन्हींके पुत्र परशुराम हुए। दूसरी ओर गाधिपत्नीने चरुके प्रभावसे दिव्य ब्रह्मशक्ति-सम्पन्न महर्षि विश्वामित्रको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। संक्षेपमें यही महर्षि विश्वामित्रके आविर्भावकी कथा है। आगे चलकर महर्षि विश्वामित्रके अनेक पुत्र-पौत्र हुए, जिनसे कुशिकवंश विख्यात हुआ। ये गोत्रकार ऋषियोंमें परिगणित हैं। आज भी सप्तर्षियोंमें स्थित होकर महर्षि विश्वामित्र जगत्‌के कल्याणमें निरत हैं।

महर्षि अत्रि

सम्पूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलोंमें प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डलके मन्त्रोंके ऋषि अलग-अलग हैं। उनमेंसे ऋग्वेदके पञ्चम मण्डलके द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं। इसीलिये यह मण्डल 'आत्रेय मण्डल' कहलाता है। इस मण्डलमें ८७ सूक्त हैं। जिनमें महर्षि अत्रिद्वारा विशेषरूपसे अग्नि, इन्द्र, मरुत्, विश्वेदेव तथा सविता आदि देवोंकी महनीय स्तुतियाँ ग्रथित हैं। इन्द्र तथा अग्निदेवताके महनीय कर्मोंका वर्णन है।

महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। पुराणोंमें इनके आविर्भावका तथा उदात्त चरित्रका बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। वहाँके वर्णनके अनुसार महर्षि अत्रि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं और उनके चक्षुभागसे इनका प्रादुर्भाव हुआ—'**अक्ष्णोऽत्रिः**' (श्रीमद्भा० ३। १२। २४)। सप्तर्षियोंमें महर्षि अत्रिका परिगणन है। साथ ही इन्हें 'प्रजापति' भी कहा गया है। महर्षि अत्रिकी पत्नी अनसूयाजी हैं, जो कर्दम प्रजापति और देवहूतिकी पुत्री हैं। देवी अनसूया पतिव्रताओंकी आदर्शभूता और महान् दिव्यतेजसे सम्पन्न हैं। महर्षि अत्रि जहाँ ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप हैं; वहीं देवी अनसूया पतिव्रताधर्म एवं शीलकी मूर्तिमती विग्रह हैं। भगवान् श्रीराम अपने भक्त महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूयाकी भक्तिको सफल करने स्वयं उनके आश्रमपर पधारे। माता अनसूयाने देवी सीताको पातिव्रतका उपदेश दिया। उन्होंने अपने पातिव्रतके बलपर शैव्या ब्राह्मणीके मृत पतिको जीवित कराया तथा बाधित सूर्यको उदित कराकर संसारका कल्याण किया। देवी अनसूयाका नाम ही बड़े महत्त्वका है। असूया नाम है परदोष-दर्शनका—गुणोंमें भी दोष-बुद्धिका और जो इन विकारोंसे रहित हो, वही 'अनसूया' है। इसी प्रकार महर्षि अत्रि भी 'अ+त्रि' हैं अर्थात् वे तीनों गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्)-से अतीत हैं—गुणातीत हैं। इस प्रकार महर्षि अत्रि-दम्पति एवंविध अपने नामानुरूप जीवन-यापन करते हुए सदाचारपरायण हो चित्रकूटके तपोवनमें रहा करते थे। अत्रिपत्नी अनसूयाके तपोबलसे ही भागीरथी गङ्गाकी एक पवित्र धारा चित्रकूटमें प्रविष्ट हुई और 'मन्दाकिनी' नामसे प्रसिद्ध हुई—

अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि॥

(रा० च० मा० २। १३२। ५-६)

सृष्टिके प्रारम्भमें जब इन दम्पतिको ब्रह्माजीने सृष्टिवर्धनकी आज्ञा दी तो इन्होंने उस ओर उन्मुख न हो तपस्याका ही आश्रय लिया। इनकी तपस्यासे ब्रह्मा, विष्णु, महेशने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया और दम्पतिकी प्रार्थनापर इनका पुत्र बनना स्वीकार किया।

अत्रि-दम्पतिकी तपस्या और त्रिदेवोंकी प्रसन्नताके फलस्वरूप विष्णुके अंशसे महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा तथा शंकरके अंशसे महामुनि दुर्वासा महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूयाके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए—

सोमोऽभूद् ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित्।
दुर्वासाः शंकरस्यांशो०॥ (श्रीमद्भा० ४। १। ३३)

वेदोंमें उपर्युक्त वृत्तान्त यथावत् नहीं मिलता है, कहीं-कहीं नामोंमें अन्तर भी है। ऋग्वेद (१०।१४३)-में '**अत्रिःसांख्यः**' कहा गया है। वेदोंमें यह स्पष्टरूपसे वर्णन है कि महर्षि अत्रिको अश्विनीकुमारोंकी कृपा प्राप्त थी। एक बार जब ये समाधिस्थ थे, तब दैत्योंने इन्हें उठाकर शतद्वार-यन्त्रमें डाल दिया और आग लगाकर इन्हें जलानेका प्रयत्न किया, किंतु अत्रिको उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। उस समय अश्विनीकुमारोंने वहाँ पहुँचकर इन्हें बचाया। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ५१वें तथा ११२वें सूक्तमें यह कथा आयी है। ऋग्वेदके दशम मण्डलमें महर्षि अत्रिके दीर्घ तपस्याके अनुष्ठानका वर्णन आया है और बताया गया है कि यज्ञ तथा तप आदि करते-करते जब अत्रि वृद्ध हो गये, तब अश्विनीकुमारोंने इन्हें नवयौवन प्रदान किया (ऋक्० १०।१४३।१)। ऋग्वेदके पञ्चम मण्डलमें अत्रिके वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रोंका वृत्तान्त आया है, जो अनेक मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि रहे हैं (ऋक्० ५।२५-२६, ५।७८)। इसी प्रकार अत्रिके गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंके द्रष्टा हैं।

ऋग्वेदके पञ्चम 'आत्रेय मण्डल' का (५२।११—१५) 'कल्याण-सूक्त' ऋग्वेदीय 'स्वस्ति-सूक्त' है, वह महर्षि अत्रिकी ऋतम्भरा प्रज्ञासे ही हमें प्राप्त हो सका है। यह सूक्त 'कल्याण-सूक्त', 'मङ्गल-सूक्त' तथा 'श्रेय-सूक्त' भी कहलाता है। जो आज भी प्रत्येक माङ्गलिक कार्यों, शुभ संस्कारों तथा पूजा-अनुष्ठानोंमें स्वस्ति-प्राप्ति, कल्याण-प्राप्ति, अभ्युदय-प्राप्ति, भगवत्कृपा-प्राप्ति तथा अमङ्गलके विनाशके लिये सस्वर पठित होता है। इस माङ्गलिक सूक्तमें अश्विनी, भग, अदिति, पूषा, द्यावापृथिवी, बृहस्पति, आदित्य, वैश्वानर, सविता तथा मित्रावरुण और सूर्य-चन्द्रमा आदि देवताओंसे प्राणिमात्रके लिये स्वस्तिकी प्रार्थना की गयी है। इससे महर्षि अत्रिके उदात्तभाव तथा लोक-कल्याणकी भावनाका किंचित् स्थापन होता है।

इसी प्रकार महर्षि अत्रिने मण्डलकी पूर्णतामें भी सवितादेवसे यही प्रार्थना की है कि 'हे सवितादेव! आप हमारे सम्पूर्ण दुःखोंको—अनिष्टोंको, शोक-कष्टोंको दूर कर दें और हमारे लिये जो हितकर हो, कल्याणकारी हो, उसे उपलब्ध करायें'—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

(ऋग्वेद ५।८२।५)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रिकी भावना अत्यन्त ही कल्याणकारी थी और उनमें त्याग, तपस्या, शौच, संतोष, अपरिग्रह, अनासक्ति तथा विश्वकल्याणकी पराकाष्ठा विद्यमान थी।

एक ओर जहाँ उन्होंने वैदिक ऋचाओंका दर्शन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी प्रजाको सदाचार और धर्माचरणपूर्वक एक उत्तम जीवनचर्यामें प्रवृत्त होनेके लिये प्रेरित किया है तथा कर्तव्याकर्तव्यका निर्देश दिया है। इन शिक्षोपदेशोंको उन्होंने अपने द्वारा निर्मित आत्रेय धर्मशास्त्रमें उपनिबद्ध किया है। वहाँ इन्होंने वेदोंके सूक्तों तथा मन्त्रोंकी अत्यन्त महिमा बतायी है। अत्रिस्मृतिका छठा अध्याय वेदमन्त्रोंकी महिमामें ही पर्यवसित है। वहाँ अघमर्षणके मन्त्र, सूर्योपस्थानका यह '**उदु त्यं जातवेदसं०**' (ऋग्वेद १।५०।१, साम० ३१, अथर्व० १३।२।१६, यजु० ७।४१) मन्त्र, पावमानी ऋचाएँ, शतरुद्रिय, गो-सूक्त, अश्व-सूक्त एवं इन्द्र-सूक्त आदिका निर्देश कर उनकी महिमा और पाठका फल बताया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रिकी वेदमन्त्रोंपर कितनी दृढ़ निष्ठा थी। महर्षि अत्रिका कहना है कि वैदिक मन्त्रोंके अधिकारपूर्वक जपसे सभी प्रकारके पाप-क्लेशोंका विनाश हो जाता है। पाठकर्ता पवित्र हो जाता है, उसे जन्मान्तरीय ज्ञान हो जाता है—जातिस्मरता प्राप्त हो जाती है और वह जो चाहता है, वह प्राप्त कर लेता है—

एतानि जप्तानि पुनन्ति जन्तूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत्।

(अत्रिस्मृति)

अपनी स्मृतिके अन्तिम ९वें अध्यायमें महर्षि अत्रिने बहुत सुन्दर बात बताते हुए कहा है कि यदि विद्वेषभावसे वैरपूर्वक भी दमघोषके पुत्र शिशुपालकी तरह भगवान्‌का स्मरण किया जाय तो उद्धार होनेमें कोई संदेह नहीं; फिर यदि तत्परायण होकर अनन्यभावसे भगवदाश्रय ग्रहण कर लिया जाय तो परम कल्याणमें क्या संदेह? यथा—

विद्वेषादपि गोविन्दं दमघोषात्मजः स्मरन्।
शिशुपालो गतः स्वर्गं किं पुनस्तत्परायणः॥

(अत्रि०)

इस प्रकार महर्षि अत्रिने अपने द्वारा दृष्ट मन्त्रोंमें, अपने धर्मसूत्रोंमें अथवा अपने सदाचरणसे यही बात बतायी है कि व्यक्तिको सत्कर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये।

महर्षि गृत्समद

(डॉ० श्रीबसन्तवल्लभजी भट्ट, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंमें महर्षि गृत्समदका विशेष माहात्म्य है। ये ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके द्रष्टा ऋषि हैं। इनके विषयमें ऋग्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथब्राह्मण, बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी (कात्यायन), महाभारत तथा गणेशपुराण आदिमें बड़े ही रोचक आख्यान प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं कुछ अन्तर भी है, किंतु उन सभीसे इनकी महिमाका ही ख्यापन होता है। उन आख्यानोंसे ज्ञात होता है कि महर्षि गृत्समद आङ्गिरसगोत्रीय शुनहोत्र ऋषिके पुत्र थे और इनका पैतृक नाम शौनहोत्र था। बादमें इन्द्रके प्रयत्नसे भृगुकुलोत्पन्न शुनक ऋषिके दत्तक पुत्रके रूपमें इनकी प्रसिद्धि हुई और ये शौनक 'गृत्समद' नामसे विख्यात हो गये। इनके गृत्समद नामकी आध्यात्मिक व्याख्यामें बताया गया है कि 'गृत्स'का अर्थ प्राण तथा 'मद' का अर्थ है अपान। अतः प्राणापानका समन्वय ही गृत्समद तत्त्व है। इनके द्वारा दृष्ट ऋग्वेदका द्वितीय मण्डल, जिसमें कुल ४३ सूक्त हैं 'गार्त्समद मण्डल' कहलाता है।

आचार्य शौनकने बृहद्देवतामें बतलाया है कि महर्षि गृत्समदमें तपस्याका महान् बल था, मन्त्रशक्ति प्रतिष्ठित थी, वे यथेच्छ रूप बनाकर देवताओंकी सहायता करते थे और असुरोंसे देवताओंकी रक्षा भी किया करते थे। उन्हें इन्द्र और अग्निदेवकी स्तुतियाँ करना अतिप्रिय था। एक बारकी बात है महर्षि गृत्समदका एक महान् यज्ञ सम्पादित हो रहा था। महर्षिका प्रिय करनेके लिये देवताओंके राजा इन्द्र स्वयं उस यज्ञमें उपस्थित हुए। असुर देवताओं, विशेषरूपसे इन्द्रसे द्वेष रखते थे। असुरोंमें भी धुनि तथा चुमुरि नामक दो महाबलशाली असुर थे। वे इन्द्रपर घात करनेके लिये अवसर ढूँढ़ा करते थे। उन्हें जब मालूम हुआ कि इन्द्र महर्षि गृत्समदके यज्ञमें गये हुए हैं तो वे भी बड़ी शीघ्रतासे आयुधोंको लेकर वहाँ जा पहुँचे, जहाँ यज्ञ हो रहा था। असुरोंको दूरसे आते देख और उनके मनोभाव जानकर महर्षि गृत्समदने इन्द्रकी रक्षाके लिये अपनी तपस्या तथा योगके बलसे अपनेको दूसरे इन्द्रके रूपमें परिवर्तित कर लिया और क्षणभरमें वे असुरोंके सामनेसे ही अदृश्य भी हो गये। दोनों असुरोंने सोचा कि इन्द्र हमारे भयसे अदृश्य हो गया है, अतः वे भी इन्द्ररूपधारी गृत्समदको ढूँढ़ने लगे। वे इन्द्ररूपधारी मुनि कभी अन्तरिक्षमें दिखलायी पड़ते तो कभी द्युलोकमें। भयंकर धुनि तथा चुमुरि आयुध लेकर उन्हें मारनेके लिये दौड़ते रहे। मुनिने उन्हें खूब भटकाया और अन्तमें उन दोनों असुरोंको बतलाया कि मैं इन्द्र नहीं हूँ, वास्तविक इन्द्र जो तुम्हारा शत्रु है, वह तो यज्ञस्थलमें ही है। असुरोंको पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ, तब गृत्समद महर्षिने इन्द्रकी महनीय कीर्तिका, उनके बल-पराक्रमका और उनके गुणोंका मन्त्रोंद्वारा गुणगान किया। गृत्समदद्वारा इन्द्रकी कीर्तिका वह गुणगान उन असुरोंके लिये वज्रके समान घातक हुआ। गृत्समदने उन दोनोंके समक्ष इन्द्रकी वीरता, शौर्य तथा प्रभुत्वका इतना वर्णन किया कि धुनि तथा चुमुरि नामक उन महादैत्योंका नैतिक बल समाप्त हो गया और उसी समय इन्द्रने उपस्थित होकर उन दोनों महादैत्योंका वध कर दिया। मुनिने भी अपना वह ऐन्द्ररूप त्याग दिया।

महर्षि गृत्समदका ऐसा अद्भुत प्रयत्न और तपोबल देखकर इन्द्र उनपर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें अपना अत्यन्त प्रिय सखा बना लिया। अक्षय तप, वाक्सिद्धि, अद्भुत पराक्रम, मन्त्र-शक्ति तथा अपनी अखण्ड भक्तिका वर उन्हें प्रदान किया। देवराज इन्द्रने अपने सखा गृत्समदका दाहिना हाथ पकड़ा और उन्हें लेकर वे महेन्द्र-सदनमें आये। बड़े ही आदर-भावसे उन्होंने महर्षिका पूजन किया और कहा—

गृणन्मदसखे यस्मात् त्वमस्मानृषिसत्तम।
तस्माद्गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि॥

(बृहद्देवता)

तभीसे शौनहोत्र गृत्समद उनका नाम पड़ गया।

बल-वीर्य एवं पराक्रम आदि सम्बन्धी महर्षि गृत्समदद्वारा की गयी इन्द्रकी वह स्तुति जो उन्होंने दैत्योंके समक्ष की थी, ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके १२वें सूक्तमें गुम्फित है। यह सूक्त 'सजनीय सूक्त' भी कहलाता है, क्योंकि इस सूक्तमें आयी हुई प्रायः सभी ऋचाओंके अन्तिम चरणमें '**स जनास इन्द्रः**' यह पद आया है। इस सूक्तमें पंद्रह मन्त्र हैं। उदाहरणके लिये पहला मन्त्र यहाँ दिया जा रहा है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

(ऋक्० २। १२। १)

महर्षि गृत्समद कहते हैं—'हे असुरो! जो उत्पन्न

होते ही देवताओंमें प्रधान एवं श्रेष्ठ हो गये, मनस्वियोंमें अग्रगण्य हो गये, जिन्होंने द्योतित होते हुए वृत्रासुर आदि राक्षसोंका वध कर सभी देवताओंकी रक्षा की और वे सभी देवताओंमें प्रमुख हो गये। जिस इन्द्रके बल, वीर्य, पराक्रमसे द्यावा-पृथिवीके सभी बलशाली भय मानते हैं और जिनके पास महान् शक्तिसम्पन्न सैन्य बल है, वही वास्तविक इन्द्र है। मैं (गृत्समद) इन्द्र नहीं हूँ।'

इसी प्रकार आगेके मन्त्रोंका सारांश है कि जिन्होंने चलायमान पृथ्वीको स्थिर किया, अन्तरिक्षका विस्तार किया, जिन्होंने मेघोंपर आधिपत्य प्राप्त किया, जिन्होंने मेघोंके मध्य विद्युत् भी उत्पन्न किया, जो सर्वत्र व्याप्त हैं, जो सभी धनोंके प्रेरक हैं, जो यजमानकी रक्षा करनेवाले हैं, अपने उपासकोंको सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं, जो अन्तर्यामी-रूपसे स्थित हैं, चराचरके नियन्ता हैं, जिनके अनुशासनमें सभी चलते हैं, जो सबके नेता हैं, जिनके अनुग्रहके बिना विजय प्राप्त करना कठिन है, जो सम्पूर्ण विश्वके प्रतिनिधि हैं, जो दुष्टोंका संहार करनेके लिये वज्र आदि आयुधोंको धारण करते हैं, जिन्होंने शम्बर नामक दैत्यका वध किया, जो अपनी सप्तरश्मियोंके द्वारा वृष्टि कर संसारको जीवन प्रदान करते हैं, जो बलवान् हैं, बुद्धिमान् हैं और यज्ञकी रक्षा करनेवाले हैं, हे असुरो! वास्तवमें वे ही इन्द्र हैं, मैं इन्द्र नहीं हूँ।

इस प्रकार यह सजनीय सूक्त इन्द्रकी महिमामें पर्यवसित है और महर्षि गृत्समदद्वारा गुम्फित है। इससे महर्षि गृत्समदकी उदारता, परोपकारिता, देवसखित्व आदि अनेक गुणोंका परिज्ञान होता है और उनकी दिव्य मन्त्र-शक्तिका भी आभास प्राप्त होता है।

एक दूसरे आख्यानमें यही वृत्तान्त किंचित् परिवर्तनके साथ आया है। तदनुसार—

प्राचीन कालकी बात है कि वेनवंशीय राजाओंके द्वारा एक महान् यज्ञका अनुष्ठान हुआ। इन्द्र आदि सभी देवता उस यज्ञमें उपस्थित हुए। महर्षि गृत्समद भी यज्ञमें आये। इन्द्रको मारनेके उद्देश्यसे अनेक दैत्य भी वहाँ छिपकर पहुँचे हुए थे, किंतु जब इन्द्रको असुरोंके आगमनकी बात ज्ञात हो गयी तब वे भयभीत हो गये और अपना ऐन्द्ररूप छोड़कर उन्होंने गृत्समद महर्षिका रूप धारण कर लिया तथा वे उस यज्ञसे भाग खड़े हुए। असुरोंने समझा कि गृत्समद ऋषि ही डरकर भाग गये हैं और हमारा अभीष्ट इन्द्र गृत्समदका रूप धारण कर यहीं यज्ञस्थलमें बैठा है। इस प्रकारका संशय असुरोंको हो गया। तब उन्होंने वास्तविक गृत्समदको ही इन्द्र समझकर विघ्न उपस्थित किया। तब गृत्समद मुनिने 'सजनीय सूक्त' (पूर्वोक्त)-द्वारा इन्द्रकी कीर्तिका ख्यापन किया कि असली इन्द्र तो इस प्रकारके महनीय गुणोंवाले हैं, मैं इन्द्र नहीं हूँ, परंतु असुरोंने महर्षि गृत्समदको पकड़ लिया। तब वास्तविक इन्द्रने असुरोंको मारकर महर्षिको छुड़ाया और दोनोंमें अत्यन्त प्रीति हो गयी। तत्पश्चात् इन्द्रने उन्हें भृगुकुलमें शुनकके पुत्र शौनकके रूपमें प्रतिष्ठित किया और अन्तमें अपने लोकमें वास करनेका तथा मन्त्रशक्ति प्राप्त करनेका वर प्रदान किया। कात्यायन मुनिने अपने सर्वानुक्रमणीमें इस वृत्तान्तका विस्तारसे वर्णन करते हुए कहा है—

इन्द्रका कथन—

त्वं तु भूत्वा भृगुकुले शुनकाच्छौनकोऽभवत्॥
एतत्सूक्तयुतं पश्य द्वितीयं मण्डलं महत्।
ततो मल्लोकसंवासं लप्स्यसे च महत् सुखम्॥
इतीन्द्रचोदितो जातः पुनर्गृत्समदो मुनिः।
द्वितीयं मण्डलं दृष्ट्वा यो जातीयेन संयुतम्॥
ऐन्द्रं प्राप्य महद्धाम मुमुदे चेन्द्रपूजितः।

महर्षि गृत्समदद्वारा इन्द्रकी प्रियता तथा उनके धामको प्राप्त करनेकी बात ऐतरेय ब्राह्मण (२१। २)-में इस प्रकार कही गयी है—

'एतेन वै गृत्समद इन्द्रस्य प्रियं धामोपागच्छत्। स परमं लोकमजयत्।'

महाभारत-अनुशासनपर्वमें भी पूर्वोक्त कथाका ख्यापन हुआ है। साथ ही महाभारतमें महामुनि गृत्समदका एक अन्य रोचक आख्यान आया है। तदनुसार गृत्समद हैहय क्षत्रियोंके राजा और वीतहव्यके पुत्र थे। एक बार काशिराज प्रतर्दनके भयसे वीतहव्य महर्षि भृगुके आश्रममें जा छिपे। इन्हें खोजते हुए प्रतर्दन भी वहाँ जा पहुँचे। पूछनेपर भृगुने कहा कि 'मेरे आश्रममें क्षत्रिय नहीं रहता'। तपोधन ऋषियोंके वचन झूठे होते नहीं, अमोघ होते हैं। अतः भृगुके उस वचनमात्रसे क्षत्रिय राजा वीतहव्य ब्राह्मण हो गये। ब्रह्मर्षि हो गये और इनके पुत्र भी गृत्समद क्षत्रियसे मन्त्रद्रष्टा परमर्षि हो गये। तबसे इनको भृगुवंशीयता प्राप्त हो गयी। यथा—

भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः॥

वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः॥
शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत्।
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः॥
यत्र गृत्समदो राजन् ब्राह्मणैः स महीयते।
स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत्॥

(महा० अनु० ३०। ५७—६०)

गणेशपुराणमें बताया गया है कि गृत्समद भगवान् गणेशके महान् भक्त थे। उनकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने हजारों वर्षपर्यन्त कठिन तप किया था। अनन्तर उन्हें उनके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुए और अनेक वर भी प्राप्त हुए।

इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थोंमें महर्षि गृत्समदके अनेक प्रकारके आख्यान प्राप्त होते हैं, जिनसे उनके दिव्य चरित्रका ख्यापन होता है।

गार्त्समद-मण्डल—इस मण्डलमें ४३ सूक्त हैं, जिनमें इन्द्र, अग्नि, आदित्य, मित्रावरुण, वरुण, विश्वेदेव तथा मरुत् आदि देवोंकी स्तुतियाँ हैं। इन्द्र और महर्षिके परस्पर सख्यका वृत्तान्त भी वर्णित है। इस मण्डलमें लगभग १६ सूक्तोंमें इन्द्रकी स्तुतियाँ हैं। अन्तिम ४२ तथा ४३वें सूक्तमें इन्द्रका कपिंजलके रूपमें आख्यापन है। राका, सिनीवाली आदि देवताओंकी भी स्तुतियाँ हैं (३२वाँ सूक्त)। मण्डलके प्रारम्भिक सूक्तोंमें अग्निदेवकी महानताका वर्णन हुआ है। गणेशका ब्रह्मणस्पतिरूपमें वर्णन इस मन्त्रमें हुआ है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋक्० २। २३। १)

मण्डलका अन्तिम ४२वाँ तथा ४३वाँ सूक्त 'वायस सूक्त' भी कहलाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (३। १०। ९)-में बताया गया है कि वायस पक्षीके अमङ्गल शब्दका श्रवण होनेपर इन दो सूक्तों (६ ऋचाओं)-का जप करना चाहिये—'**वयसाममनोज्ञा वाचः श्रुत्वा कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इति सूक्ते जपेत्।**'

इन सूक्तोंके देवता कपिंजलरूपधारी इन्द्र हैं और इनसे प्रार्थना की गयी है कि हे कपिंजल! तुम हमारे लिये प्रकृष्ट कल्याणकारी होओ—'**सुमङ्गलश्च शकुने भवासि।**' (२। ४२। १), '**सुमङ्गलो भद्रवादी वेदेह**' (२। ४२। २)। साथ ही उत्तम बुद्धिकी प्रार्थना भी की गयी है—'**सुमतिं चिकिद्धि नः॥**' (२। ४३। ३)

इस प्रकार महर्षि गृत्समदका 'गार्त्समद-मण्डल' माङ्गलिक अभिलाषाके साथ पूर्ण हुआ है।

महर्षि वामदेव

महर्षि वामदेव ऋग्वेदके चौथे मण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। चौथे मण्डलमें कुल ५८ सूक्त हैं। जिनमें महर्षिद्वारा अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, ऋभु, दधिकाष्ण, विश्वेदेव तथा उषा आदि देवताओंकी स्तुतियाँ की गयी हैं। उन स्तुतियोंमें लोककल्याणकी उदात्त भावना निहित है। महर्षि वामदेव ब्रह्मज्ञानी तथा जातिस्मर महात्मा रहे हैं। वायुपुराणमें आया है कि इन्होंने अपने ज्ञानसे ऋषित्व प्राप्त किया था—'**ज्ञानतो ऋषितां गतः**' (वायु० ५९। ९१)। ऋग्वेदमें ऋषिने स्वयं अपना परिचय दिया है, तदनुसार स्पष्ट होता है कि इन्हें गर्भमें ही आत्मज्ञान और ब्रह्मविद्याका साक्षात्कार हो गया था। ऋग्वेदकी निम्न ऋचाका उन्हें माताके गर्भमें ही दर्शन हो गया था, इसलिये उन्होंने माताके उदरमें ही कहा था—

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्॥१

(ऋक्० ४। २७। १)

ऋचाका भाव यह है कि 'अहो! कितने आश्चर्य और आनन्दकी बात है कि गर्भमें रहते-रहते ही मैंने इन अन्तःकरण और इन्द्रियरूप देवताओंके अनेक जन्मोंका रहस्य भलीभाँति जान लिया अर्थात् मैं इस बातको जान गया कि ये जन्म आदि वास्तवमें इन अन्तःकरण और इन्द्रियोंके ही होते हैं, आत्माके नहीं। इस रहस्यको समझनेसे पहले मुझे सैकड़ों लोहेके समान कठोर शरीररूपी पिंजरोंमें अवरुद्ध कर रखा था। उनमें मेरी ऐसी दृढ़ अहंता हो गयी थी कि उससे छूटना मेरे

१-ऐतरेय-उपनिषद् (अध्याय २, खण्ड १। ५-६)-में जन्म-मृत्युके रहस्य-क्रममें तथा परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके क्रममें इसी वामदेव ऋचाको उद्धृत किया गया है।

लिये कठिन हो रहा था। अब मैं बाज पक्षीकी भाँति ज्ञानरूप बलके वेगसे उन सबको तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ। उन शरीररूप पिंजरोंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा, मैं सदाके लिये उन शरीरोंकी अहंतासे मुक्त हो गया हूँ।' इस ऋचामें गर्भस्थित वामदेवने यह उपदेश दिया है कि देह आदिमें आत्मबुद्धि नहीं करनी चाहिये, क्योंकि देहात्मवाद ही अविद्याजन्य बन्धन है और उस बन्धनका नाश ही मोक्ष है। जैसे पक्षी घोंसलेसे भिन्न है, वैसे ही यह आत्मतत्त्व भी शरीरसे सर्वथा व्यतिरिक्त है।

इस प्रकार गर्भज्ञानी महात्मा वामदेव ऋषिको गर्भमें भी मोह नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि मेरा आविर्भाव भी सामान्य न होकर कुछ विशिष्ट ढंगसे ही होना चाहिये। उन्होंने सोचा कि माताकी योनिसे तो सभी जन्म लेते हैं और इसमें अत्यन्त कष्ट भी है, अतः मैं माताके पार्श्व भागका भेदन करके बाहर निकलूँगा—

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।

(ऋक्० ४। १८। २)

इन्द्रादि देवोंने जब गर्भस्थित वामदेवको ऐसा कार्य करनेसे रोका तो उन्होंने अपने समस्त ज्ञान और अनुभवका परिचय देते हुए उनसे कहा—'हे इन्द्र! मैं जानता हूँ कि मैं ही प्रजापति मनु हूँ, मैं ही सबको प्रेरणा देनेवाला सविता देव हूँ, मैं ही दीर्घतमाका मेधावी कक्षीवान् नामक ऋषि हूँ, मैं ही अर्जुनीका पुत्र कुत्स नामक ऋषि हूँ और मैं ही क्रान्तदर्शी उशना ऋषि हूँ। तात्पर्य यह है कि परमार्थ-दृष्टिसे मैं ही सब कुछ हूँ, इसलिये मुझे आप सर्वात्माके रूपमें देखें।' वामदेवी ऋचा इस प्रकार है—

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाऽहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा॥

(ऋक्० ४। २६। १)

इस प्रकार अपने आत्मज्ञान तथा जन्मान्तरीय ज्ञानका परिचय देकर वामदेवने अपने योगबलसे श्येन (बाज) पक्षीका रूप धारण कर लिया और बड़े वेगसे वे अपनी माताकी कुक्षि-प्रदेशसे बाहर निकल पड़े[1]। उनके इस कार्यसे इन्द्र रुष्ट हो गये, किंतु वामदेवने अपनी स्तुतियोंद्वारा उन्हें प्रसन्न कर लिया और इन्द्रकी उनपर कृपा हो गयी। कालान्तरमें वामदेव ऋषि जब दरिद्रतासे ग्रस्त हो गये, तब भी इन्द्रदेवताने उनपर कृपा की और उन्हें अमृतके समान मधुर पेय प्रदान किया, इससे वामदेव संतृप्त हो गये। इन्द्रकी प्रशंसामें वामदेव ऋषि कह उठते हैं—'द्योतित होनेवाले अग्नि आदि देवताओंके मध्य मैं इन्द्रके समान अन्य किसी देवताको नहीं देखता हूँ, जो सुख-शान्ति दे सके'—'**न देवेषु विविदे मर्डितारम्**' (ऋक्० ४। १८। १३)। 'उन्होंने ही मुझे मधुर जल प्रदान किया'—'**मध्वा जभार**' (ऋक्० ४। १८। १३)।

महर्षि वामदेवने विश्वामित्रद्वारा दृष्ट संयातसूक्तोंका प्रचार किया—'**विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवोऽसृजत्।**' (ऐत० ब्राह्म० ४। २)। इन्होंने अनेक यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान किया था। स्वयं इन्द्र उपस्थित होकर इनके यज्ञकी रक्षा करते थे (ऋक्० ४। १६। १८)। वामदेव ऋषिने स्वयं कहा है कि हम सात (६ अंगिरा और वामदेव) मेधावी हैं, हमने ही अग्निकी रश्मियोंको उत्पन्न किया है (ऋक्० ४। २। १५)।

महर्षि वामदेव गौतमके पुत्र कहे गये हैं। गोत्रकार ऋषियोंमें इनकी गणना है। गायत्री-मन्त्रके चौबीस अक्षरोंके पृथक्-पृथक् ऋषि हैं, उनमें पाँचवें अक्षरके ऋषि वामदेव ही हैं। इनका तप, स्वाध्याय, अनुष्ठान तथा आत्मनिष्ठैक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। मुख्यरूपसे ये इन्द्र, अग्नि तथा सवितादेवके उपासक थे। इनके जीवनमें शौच, संतोष, अपरिग्रह तथा परहितका उदात्तभाव प्रतिष्ठित था। इसी तप, स्वाध्याय और अध्यात्म-साधनाके बलपर उन्हें मन्त्रशक्तिका दर्शन हुआ था। रामायण आदिमें वर्णन आया है कि महर्षि वामदेव राजर्षि दशरथके प्रधान ऋत्विक् और कुलपुरोहित रहे हैं—

१-आचार्य सायणने इस घटनाका विवरण इस प्रकार दिया है—

गर्भस्थो ज्ञानसम्पन्नो वामदेवो महामुनिः। मतिं चक्रे न जायेय योनिदेशात्तु मातृतः॥
किंतु पार्श्वादितश्चेति.....। गर्भे शयानं सुचिरं मातुर्गर्भादनिर्गतम्॥
श्येनरूपं समास्थाय गर्भाद्योगेन निसृतः। ऋषिर्गर्भे शयानः सन् ब्रूते गर्भे नु सन्निति॥

(ऋक्० ४। १८ के प्रारम्भमें सायणभाष्य)

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे॥
(वा० रा० १। ७। ४)

बामदेव रघुकुल गुर ग्यानी।
(रा० च० मा० १। ३६१। १)

बामदेउ बसिष्ठ तब आ। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥
(रा०च०मा० २। १६९। ७-८)

इस प्रकार महर्षि वामदेवकी मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंमें विशेष महिमा है।

महर्षि वामदेव और 'वामदेव-मण्डल'

ऋग्वेदका चौथा मण्डल महर्षि वामदेवके द्वारा दृष्ट है। इसीलिये वह 'वामदेव-मण्डल' और इनके द्वारा दृष्ट ऋचाएँ 'वामदेवी ऋचाएँ' कहलाती हैं। चतुर्थ मण्डलके प्रारम्भके कई सूक्तोंमें अग्निदेवकी महनीय स्तुतियाँ हैं, जिनमें अग्निदेवके विभिन्न स्वरूपों तथा उनके कार्योंका विवरण है। इस मण्डलमें कई आख्यान भी आये हैं। सोलहवें सूक्तकी ऋचाओंमें राजर्षि कुत्सका आख्यान आया है।

राजर्षि कुत्सका आख्यान—रुरु नामक एक राजर्षि थे, उनके पुत्र थे—कुत्स। एक बार राजर्षि कुत्स जब शत्रुओंद्वारा संग्राममें पराजित हो गये, तब अशक्त रुरुने शत्रुओंके विनाशके लिये देवराज इन्द्रका आह्वान किया। स्तुतिसे इन्द्र प्रसन्न हो गये और उन्होंने स्वयं उपस्थित होकर उनके शत्रुओंको मार गिराया। तदनन्तर इन्द्र तथा कुत्समें अत्यन्त प्रीति हो गयी। इतना ही नहीं, इन्द्र मित्रभावको प्राप्त राजर्षि कुत्सको देवलोकमें ले गये और अपने ही समान उन्हें रूप प्रदान कर अपने अर्धासनपर उन्हें बिठाया। उसी समय देवी शची वहाँ उपस्थित हुईं तो वे दो इन्द्रोंको देखकर सशंकित हो गयीं और निर्णय न कर सकीं कि वास्तवमें उसके स्वामी इन्द्र इनमेंसे कौन हैं!

इस आख्यायिकाको ऋग्वेद (४। १६। १०)-में संकलित किया गया है। इसमें महर्षि वामदेवने इन्द्रदेवताकी महिमामें इस आख्यायिकाको उपन्यस्त बताया है। कथाका भाव यह है कि स्तुतिसे इन्द्रदेवता प्रसन्न होकर अपने भक्तको साक्षात् दर्शन देते हैं, उसका कार्य सिद्ध कर देते हैं और उसे अपना पद भी प्रदान कर देते हैं। अतः देवताओंकी भक्ति करनी चाहिये, इससे भगवान्‌की संनिधि प्राप्त हो जाती है।

ऐसे ही इस मण्डलमें पुरुकुत्स तथा उनके पुत्र राजर्षि त्रसदस्यु आदिके भी अनेक सुन्दर प्रेरणाप्रद आख्यान आये हैं।

सौरी ऋचा—चतुर्थ मण्डलमें एक मुख्य ऋचा (मन्त्र) आयी है जो 'सौरी' ऋचा कहलाती है। इस ऋचाके द्रष्टा वामदेव ऋषि हैं और इसमें भगवान् सूर्य ही सर्वात्मा, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, सर्वाधार तथा परब्रह्म परमात्माके रूपमें निरूपित किये गये हैं, अतः इस ऋचाका सूर्य, आदित्य या सविता-सम्बन्धी वेदमें आये सभी मन्त्रोंमें विशेष महत्त्व है। यह ऋचा इस प्रकार है—

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्॥
(ऋक्० ४। ४०। ५)

—यह मन्त्र विशेष महत्त्वका होनेके कारण यजुर्वेद (१०। २४, १२। १४), काण्वशाखा (१६। ५। १८, १५। ६। २५), तैत्तिरीयसंहिता (१। ८। १५। २, ४। २। १। ५), ऐतरेय ब्राह्मण (४। २०) तथा तैत्तिरीय आरण्यक (१०। १०। २) आदिमें यथावत् उपन्यस्त है। आश्वलायन श्रौतसूत्र आदिमें निर्दिष्ट है कि यह सौरी ऋचा मैत्रावरुणशस्त्रयागमें विनियुक्त है। ऋग्विधान (२। २४०)-में एक श्लोक इस प्रकार आया है—

हंसः शुचिषदित्यृचा शुचिरीक्षेद्दिवाकरम्।
अन्तकाले जपन्नेति ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम्॥

—इस श्लोकसे यह भाव स्पष्ट है कि 'पूर्वोक्त ऋचा' **हंसः शुचिषत्**' में भगवान् दिवाकर, जो साक्षात् परमात्माके रूपमें दर्शन दे रहे हैं, उनकी आराधना करनी चाहिये। अन्त समयमें इस ऋचाका जप करने तथा आदित्य-मण्डलमें जो हिरण्मयपुरुष नारायण स्थित हैं, उनका ध्यान करनेसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है और उनका शाश्वत परमधाम प्राप्त होता है।'

उपर्युक्त ऋचाका भाव यह है कि आदित्य-मण्डलाधिष्ठातृ हिरण्मय-नारायण जो पुरुष हैं, वे ही परमात्मा हैं। वे

सर्वव्यापक हैं। वे द्युलोकमें प्रतिष्ठित हैं। वे मध्यस्थानीय वायु देवता हैं, वे ही अन्तरिक्षमें संचरण करनेवाले हैं। वे ही होम-निष्पादक होता हैं, वे ही गार्हपत्याग्नि हैं, वे ही अतिथिवत् पूज्य अग्निरूप हैं, वे लौकिकाग्नि हैं। वे ही मनुष्योंमें चैतन्यरूपसे अन्तरात्मामें स्थित हैं, वे ही वरणीय मण्डलमें स्थित और वे ही सत्यस्वरूप हैं। वे ही व्योममें, उदकमें तथा रश्मियोंमें प्रकट होते हैं। इन्द्र आदि अन्य देवता तो अप्रत्यक्ष हैं, किंतु भगवान् आदित्य प्रत्यक्ष सबको नित्य दर्शन देते हैं। यथा—वे विद्युत्के रूपमें चमकते हैं, नित्य उदयाचलपर उदित होते हैं। इस प्रकार आदित्य ही सर्वाधिष्ठान ब्रह्मतत्त्व हैं, उपास्य हैं।

इसी प्रकार इस चतुर्थ मण्डलमें अनेक महत्त्वके सूक्त हैं। वार्ताशास्त्र, कृषिशास्त्र-सम्बन्धी अनेक मन्त्र हैं। क्षेत्रके कर्षण-सम्बन्धी मन्त्र हैं। हलके फाल आदिकी स्तुतियाँ हैं। आज्य-स्तुति है। जैसे—चतुर्थ मण्डलके ५७ वें सूक्तमें '**क्षेत्रस्य पतिना०, शुनं वाहाः०, शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं०**' आदि महत्त्वके मन्त्र हैं। चतुर्थ मण्डलके अन्तिम ५८ वें सूक्तमें ११ ऋचाएँ हैं। ये ऋचाएँ अग्नि, सूर्य, अप्, गोघृत आदि देवतापरक हैं। यह सूक्त आज्यसूक्त भी कहलाता है। इसका आदि मन्त्र इस प्रकार है—

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारपांशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥

(ऋक्० ४।५८।१)

'**चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य०**' यह पञ्चदेवतापरक मन्त्र इसी ५८ वें सूक्तका तीसरा मन्त्र है। ऐसे ही '**सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो०**' (४।५८।७)—यह मन्त्र भी इसी सूक्तमें है।

इस प्रकार महर्षि वामदेवद्वारा दृष्ट चतुर्थ मण्डल अत्यन्त महत्त्वका है। इसके अध्ययनसे महर्षि वामदेवके महनीय चरित्रका किञ्चित् ख्यापन होता है। औपनिषदिक श्रुति है कि जन्म-जन्मान्तरके ज्ञान रखनेवाले वे ऋषि वामदेव इस शरीरका भेदन कर भगवान्के धामको प्राप्त करके आप्तकाम हो सदाके लिये अमर हो गये—

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्।
स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः समभवत् समभवत्॥

(ऐतरेयोपनिषद् २।१।६)

महर्षि भरद्वाज

(आचार्य श्रीदुर्गाचरणजी शुक्ल)

ऋग्वेदके छठे मण्डलके द्रष्टा भरद्वाज ऋषि कहे गये हैं। इस मण्डलमें भरद्वाजके ७६५ मन्त्र हैं। अथर्ववेदमें भी भरद्वाजके २३ मन्त्र मिलते हैं। वैदिक ऋषियोंमें भरद्वाज ऋषिका अति उच्च स्थान है। भरद्वाजके पिता बृहस्पति और माता ममता थीं।

भरद्वाजका वंश—ऋषि भरद्वाजके पुत्रोंमें १० ऋषि ऋग्वेदके मन्त्रद्रष्टा हैं और एक पुत्री जिसका नाम 'रात्रि' था, वह भी रात्रिसूक्तकी मन्त्रद्रष्टा मानी गयी है। भरद्वाजके मन्त्रद्रष्टा पुत्रोंके नाम हैं—ऋजिष्वा, गर्ग, नर, पायु, वसु, शास, शिराम्बिठ, शुनहोत्र, सप्रथ और सुहोत्र। ऋग्वेदकी सर्वानुक्रमणीके अनुसार ऋषिका 'कशिपा' भरद्वाजकी पुत्री कही गयी है। इस प्रकार ऋषि भरद्वाजकी १२ संतानें मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंकी कोटिमें सम्मानित थीं। भरद्वाज ऋषिने बड़े गहन अनुभव किये थे। उनकी शिक्षाके आयाम अतिव्यापक थे।

भरद्वाजकी शिक्षा—भरद्वाजने इन्द्रसे व्याकरण-शास्त्रका अध्ययन किया था और उसे व्याख्यासहित अनेक ऋषियोंको पढ़ाया था। 'ऋक्तन्त्र' और 'ऐतरेय ब्राह्मण' दोनोंमें इसका वर्णन है।

भरद्वाजने इन्द्रसे आयुर्वेद पढ़ा था, ऐसा चरक ऋषिने लिखा है। अपने इस आयुर्वेदके गहन अध्ययनके आधारपर भरद्वाजने आयुर्वेदसंहिताकी रचना भी की थी।

भरद्वाजने महर्षि भृगुसे धर्मशास्त्रका उपदेश प्राप्त किया और 'भरद्वाज-स्मृति' की रचना की। महाभारत, शान्तिपर्व (१८२।५) तथा हेमाद्रिने इसका उल्लेख किया है। पाञ्चरात्र-भक्ति-सम्प्रदायमें प्रचलित है कि सम्प्रदायकी एक संहिता 'भरद्वाज-संहिता' के रचनाकार भी ऋषि भरद्वाज ही थे।

महाभारत, शान्तिपर्वके अनुसार ऋषि भरद्वाजने 'धनुर्वेद' पर प्रवचन किया था (२१०।२१)। वहाँ यह भी कहा गया है कि ऋषि भरद्वाजने 'राजशास्त्र' का प्रणयन किया था (५८।३)। कौटिल्यने अपने पूर्वमें हुए अर्थशास्त्रके रचनाकारोंमें ऋषि भरद्वाजको सम्मानसे स्वीकारा है।

ऋषि भरद्वाजने 'यन्त्रसर्वस्व' नामक बृहद् ग्रन्थकी रचना की थी। इस ग्रन्थका कुछ भाग स्वामी ब्रह्ममुनिने 'विमान-शास्त्र' के नामसे प्रकाशित कराया है। इस ग्रन्थमें उच्च और निम्न स्तरपर विचरनेवाले विमानोंके लिये विविध धातुओंके निर्माणका वर्णन है।

इस प्रकार एक साथ व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद और भौतिक विज्ञानवेत्ता ऋषि भरद्वाज थे—इसे उनके ग्रन्थ और अन्य ग्रन्थोंमें दिये उनके ग्रन्थोंके उद्धरण ही प्रमाणित करते हैं। उनकी शिक्षाके विषयमें एक मनोरंजक घटना तैत्तिरीय ब्राह्मण-ग्रन्थमें मिलती है। घटनाका वर्णन इस प्रकार है—

भरद्वाजने सम्पूर्ण वेदोंके अध्ययनका यत्न किया। दृढ़ इच्छा-शक्ति और कठोर तपस्यासे इन्द्रको प्रसन्न किया। भरद्वाजने प्रसन्न हुए इन्द्रसे अध्ययनहेतु सौ वर्षकी आयु माँगी। भरद्वाज अध्ययन करते रहे। सौ वर्ष पूरे हो गये। अध्ययनकी लगनसे प्रसन्न होकर दुबारा इन्द्रने फिर वर माँगनेको कहा तो भरद्वाजने पुनः सौ वर्ष अध्ययनके लिये और माँगा। इन्द्रने सौ वर्ष प्रदान किये। इस प्रकार अध्ययन और वरदानका क्रम चलता रहा। भरद्वाजने तीन सौ वर्षोंतक अध्ययन किया। इसके बाद पुनः इन्द्रने उपस्थित होकर कहा—'हे भरद्वाज! यदि मैं तुम्हें सौ वर्ष और दे दूँ तो तुम उनसे क्या करोगे?' भरद्वाजने सरलतासे उत्तर दिया, 'मैं वेदोंका अध्ययन करूँगा।' इन्द्रने तत्काल बालूके तीन पहाड़ खड़े कर दिये, फिर उनमेंसे एक मुट्ठी रेत हाथोंमें लेकर कहा—'भरद्वाज, समझो ये तीन वेद हैं और तुम्हारा तीन सौ वर्षोंका अध्ययन यह मुट्ठीभर रेत है। वेद अनन्त हैं। तुमने आयुके तीन सौ वर्षोंमें जितना जाना है, उससे न जाना हुआ अत्यधिक है।' अतः मेरी बातपर ध्यान दो—'अग्नि है सब विद्याओंका स्वरूप। अतः अग्निको ही जानो। उसे जान लेनेपर सब विद्याओंका ज्ञान स्वतः हो जायगा, इसके बाद इन्द्रने भरद्वाजको सावित्र्य-अग्नि-विद्याका विधिवत् ज्ञान कराया। भरद्वाजने उस अग्निको जानकर उससे अमृत-तत्त्व प्राप्त किया और स्वर्गलोकमें जाकर आदित्यसे सायुज्य प्राप्त किया' (तै० ब्रा० ३।१०।११)।

इन्द्रद्वारा अग्नि-तत्त्वका साक्षात्कार किया, ज्ञानसे तादात्म्य किया और तन्मय होकर रचनाएँ कीं। आयुर्वेदके प्रयोगोंमें वे परम निपुण थे। इसीलिये उन्होंने ऋषियोंमें सबसे अधिक आयु प्राप्त की थी। वे ब्राह्मणग्रन्थोंमें '**दीर्घजीवितम**' पदसे सबसे अधिक लम्बी आयुवाले ऋषि गिने गये हैं (ऐतरेय आरण्यक १।२।२)। चरक ऋषिने भरद्वाजको '**अपरिमित**' आयुवाला कहा (सूत्र-स्थान १।२६)। भरद्वाज ऋषि काशिराज दिवोदासके पुरोहित थे। वे दिवोदासके पुत्र प्रतर्दनके पुरोहित थे और फिर प्रतर्दनके पुत्र क्षत्रका भी उन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषिने यज्ञ सम्पन्न कराया था (जै० ब्रा० ३।२।८)। वनवासके समय श्रीराम इनके आश्रममें गये थे, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे त्रेता-द्वापरका सन्धिकाल था। उक्त प्रमाणोंसे भरद्वाज ऋषिको '**अनूचानतम**' और '**दीर्घजीवितम**' या '**अपरिमित**' आयु कहे जानेमें कोई अत्युक्ति नहीं लगती है।

साम-गायक—भरद्वाजने 'सामगान' को देवताओंसे प्राप्त किया था। ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें कहा गया है—'यों तो समस्त ऋषियोंने ही यज्ञका परम गुह्य ज्ञान जो बुद्धिकी गुफामें गुप्त था, उसे जाना, परंतु भरद्वाज ऋषिने द्युस्थान (स्वर्गलोक)-के धाता, सविता, विष्णु और अग्नि देवतासे ही बृहत्सामका ज्ञान प्राप्त किया' (ऋक्० १०।१८१।२)। यह बात भरद्वाज ऋषिकी श्रेष्ठता और विशेषता दोनों दर्शाती है। '**साम**' का अर्थ है (सा+अमः) ऋचाओंके आधारपर आलाप। ऋचाओंके आधारपर किया गया गान 'साम' है। ऋषि भरद्वाजने आत्मसात् किया था 'बृहत्साम'। ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी परिभाषाओंके संदर्भमें हम कह सकते हैं कि ऋचाओंके आधारपर स्वरप्रधान ऐसा गायन जो स्वर्गलोक, आदित्य, मन, श्रेष्ठत्व और तेजस्को स्वर-आलापमें व्यञ्जित करता हो, 'बृहत्साम' कहा जाता है। ऋषि भरद्वाज ऐसे ही बृहत्साम-गायक थे। वे चार प्रमुख साम-गायकों—

गोतम, वामदेव, भरद्वाज और कश्यपकी श्रेणीमें गिने जाते हैं।

संहिताओंमें ऋषि भरद्वाजके इस 'बृहत्साम' की बड़ी महिमा बतायी गयी है। काठकसंहितामें तथा ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा गया है कि 'इस बृहत्सामके गायनसे शासक सम्पन्न होता है तथा ओज, तेज और वीर्य बढ़ता है। 'राजसूय यज्ञ' समृद्ध होता है। राष्ट्र और दृढ़ होता है (ऐत० ब्रा० ३६। ३)। राष्ट्रको समृद्ध और दृढ़ बनानेके लिये भरद्वाजने राजा प्रतर्दनसे यज्ञमें इसका अनुष्ठान कराया था, जिससे प्रतर्दनका खोया राष्ट्र उन्हें पुनः मिला था' (काठक २१। १०)। प्रतर्दनकी कथा महाभारतके अनुशासनपर्व (अ० ३०)-में आयी है।

भरद्वाजके विचार—वे कहते हैं—अग्निको देखो, यह मरणधर्मा मानवोंमें मौजूद अमर ज्योति है। यह अग्नि विश्वकृष्टि है अर्थात् सर्वमनुष्यरूप है। यह अग्नि सब कर्मोंमें प्रवीणतम ऋषि है, जो मानवमें रहती है, उसे प्रेरित करती है ऊपर उठनेके लिये। अतः पहचानो—

पश्यतेममिदं ज्योतिस्मृतं मर्त्येषु।

(ऋक्० ६। ९। ४)

प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः।

(ऋक्० ६। १४। २)

मानवी अग्नि जागेगी। विश्वकृष्टिको जब प्रज्वलित करेंगे तो उसे धारण करनेके लिये साहस और बलकी आवश्यकता होगी। इसके लिये आवश्यक है कि आप सचाईपर दृढ़ रहें। ऋषि भरद्वाज कहते हैं—'हम झुकें नहीं। हम सामर्थ्यवान्‌के आगे भी न झुकें। दृढ़ व्यक्तिके सामने भी नहीं झुकें। क्रूर-दुष्ट-हिंसक-दस्युके आगे भी हमारा सिर झुके नहीं'—

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय०

(ऋक्० ६। २४। ८)

ऋषि समझाते हैं कि जीभसे ऐसी वाणी बोलनी चाहिये कि सुननेवाले बुद्धिमान् बनें—'**जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ**' (६। ६७। ८)। हमारी विद्या ऐसी हो, जो कपटी दुष्टोंका सफाया करे, युद्धोंमें संरक्षण दे, इच्छित धनोंको प्राप्त कराये और हमारी बुद्धियोंको निन्दित मार्गसे रोके।

(ऋक्० ६। ६१। ३,६,१४)

भरद्वाज ऋषिका विचार है कि हमारी सरस्वती, हमारी विद्या इतनी समर्थ हो कि वह सभी प्रकारके मानवोंका पोषण करे। 'हे सरस्वती! सब कपटी दुष्टोंकी प्रजाओंका नाश कर।'

'नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।'

हे सरस्वती! तू युद्धोंमें हम सबका रक्षण कर। '**धीनामवित्र्यवतु॥**' हे सरस्वती! तू हमसबकी बुद्धियोंकी सुरक्षा कर। '**अवा वाजेषु, नो नेषि वस्यः।**'

(६। ६१। ३,४,६,१४)

इस प्रकार भरद्वाजके विचारोंमें वही विद्या है, जो हम सबका पोषण करे, कपटी दुष्टोंका विनाश करे, युद्धमें हमारा रक्षण करे, हमारी बुद्धि शुद्ध रखे तथा हमें वाञ्छित अर्थ देनेमें समर्थ हो। ऐसी विद्याको जिन्होंने प्राप्त किया है, ऋषिका उन्हें आदेश है—'**श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः**' (६। ३१। ५)। अरे, ओ ज्ञानको प्रत्यक्ष करनेवाले! प्रजाजनोंको उस उत्तम ज्ञानको सुनाओ और जो दास हैं, सेवक हैं, उनको श्रेष्ठ नागरिक बनाओ—'**दासान्यार्याणि करः**' (६। २२। १०)। ज्ञानी, विज्ञानी, शासक, कुशल योद्धा और राष्ट्रको अभय देनेवाले ऋषि भरद्वाजके ऐसे ही तीव्र, तेजस्वी और प्रेरक विचार हैं।

महर्षि भृगु

भगवान् विष्णुके हृदय-देशमें स्थित महर्षि भृगुका पदचिह्न उपासकोंमें सदाके लिये श्रद्धास्पद हो गया। पौराणिक कथा है कि एक बार मुनियोंकी इच्छा यह जाननेकी हुई कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीनों देवोंमें सर्वश्रेष्ठ कौन है? परंतु ऐसे महान् देवोंकी परीक्षाकी सामर्थ्य कौन करे? उसी मुनिमण्डलीमें महर्षि भृगु भी विद्यमान थे। सभी मुनियोंकी दृष्टि महर्षि भृगुपर जाकर टिक गयी, क्योंकि वे महर्षिके बुद्धिबल, कौशल, असीम सामर्थ्य तथा अध्यात्म-मन्त्रज्ञानसे सुपरिचित थे। अब तो भृगु त्रिदेवोंके परीक्षक बन गये। सर्वप्रथम भृगु अपने पिता ब्रह्माके पास गये और उन्हें प्रणाम नहीं किया, मर्यादाका उल्लंघन देखकर ब्रह्मा रुष्ट

हो गये। भृगुने देखा कि इनमें क्रोध आदिका प्रवेश है; अतः वे वहाँसे लौट आये और महादेवके पास जा पहुँचे, किंतु वहाँ भी महर्षि भृगुको संतोष न हुआ। अब वे विष्णुके पास गये। देखा कि भगवान् नारायण शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं और माता लक्ष्मी उनकी चरणसेवामें निरत हैं। निःशंकभावसे भगवान्‌के समीप जाकर महामुनिने उनके वक्षःस्थलपर तीव्र वेगसे लात मारी, पर यह क्या? भगवान् जाग पड़े और मुसकराने लगे। भृगुजीने देखा कि यह तो क्रोधका अवसर था, परीक्षाके लिये मैंने ऐसा दारुण कर्म किया था, लेकिन यहाँ तो कुछ भी असर नहीं है। भगवान् नारायणने प्रसन्नतापूर्वक मुनिको प्रणाम किया और उनके चरणको धीरे-धीरे अपना मधुर स्पर्श देते हुए वे कहने लगे—'मुनिवर! कहीं आपके पैरमें चोट तो नहीं लगी? ब्राह्मणदेवता आपने मुझपर बड़ी कृपा की। आज आपका यह चरण-चिह्न मेरे वक्षःस्थलपर सदाके लिये अंकित हो जायगा।' भगवान् विष्णुकी ऐसी विशाल सहृदयता देखकर भृगुजीने यह निश्चय किया कि देवोंके देव देवेन्द्र नारायण ही हैं।

ये महर्षि भृगु ब्रह्माजीके नौ मानस पुत्रोंमें अन्यतम हैं। एक प्रजापति भी हैं और सप्तर्षियोंमें इनकी गणना है। सुप्रसिद्ध महर्षि च्यवन इन्हींके पुत्र हैं। प्रजापति दक्षकी कन्या ख्यातिदेवीको महर्षि भृगुने पत्नीरूपमें स्वीकार किया, जिनसे इनकी पुत्र-पौत्र परम्पराका विस्तार हुआ। महर्षि भृगुके वंशज 'भार्गव' कहलाते हैं। महर्षि भृगु तथा उनके वंशधर अनेक मन्त्रोंके दृष्टा हैं। ऋग्वेद (५। ३१। ८)-में उल्लेख आया है कि कवि उशना (शुक्राचार्य) भार्गव कहलाते हैं। कवि उशना भी वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेदके नवम मण्डलके ४७ से ४९ तथा ७५से ७९ तकके सूक्तोंके ऋषि भृगुपुत्र उशना ही हैं। इसी प्रकार भार्गव वेन, सोमाहुति, स्यूमरश्मि, भार्गव आर्वि आदि भृगुवंशी ऋषि अनेक मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेदमें पूर्वोक्त वर्णित महर्षि भृगुकी कथा तो प्राप्त नहीं होती; किंतु इनका तथा इनके वंशधरोंका मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके रूपमें ख्यापन हुआ है। यह सब महर्षि भृगुकी महिमाका ही विस्तार है।

महर्षि कण्व

देवी शकुन्तलाके धर्मपिताके रूपमें महर्षि कण्वकी अत्यन्त प्रसिद्धि है। महाकवि कालिदासने अपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में महर्षिके तपोवन, उनके आश्रम-प्रदेश तथा उनका जो धर्माचारपरायण उज्ज्वल एवं उदात्त चरित प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। उनके मुखसे एक भारतीय कथाके लिये विवाहके समय जो शिक्षा निकली है, वह उत्तम गृहिणीका आदर्श बन गयी[1]। वेदमें ये बातें तो वर्णित नहीं हैं, पर इनके उत्तम ज्ञान, तपस्या, मन्त्रज्ञान, अध्यात्मशक्ति आदिका आभास प्राप्त होता है। १०३ सूक्तवाले ऋग्वेदके आठवें मण्डलके अधिकांश मन्त्र महर्षि कण्व तथा उनके वंशजों और गोत्रजोंद्वारा दृष्ट हैं। कुछ सूक्तोंके अन्य भी द्रष्टा ऋषि हैं, किंतु **'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'** के अनुसार महर्षि कण्व अष्टम मण्डलके द्रष्टा ऋषि कहे गये हैं। ऋग्वेदके साथ ही शुक्लयजुर्वेदकी माध्यन्दिन तथा काण्व—इन दो शाखाओंमेंसे द्वितीय 'काण्वसंहिता' के वक्ता भी महर्षि कण्व ही हैं। उन्हींके नामसे इस संहिताका नाम 'काण्वसंहिता' हो गया। ऋग्वेद (१। ३६। १०-११)-में इन्हें अतिथिप्रिय कहा गया है। इनके ऊपर अश्विद्वयकी कृपाकी बात अनेक जगह आयी है और यह भी बताया गया है कि कण्वपुत्र तथा इनके वंशधर प्रसिद्ध याज्ञिक थे (ऋक्० ८। १। ८) तथा वे इन्द्रके भक्त थे। ऋग्वेदके ८वें मण्डलके चौथे सूक्तमें कण्व-गोत्रज देवातिथि ऋषि हैं; जिन्होंने सौभाग्यशाली कुरुङ्ग नामक राजासे ६० हजार गायें दानमें प्राप्त की थीं[2]।

१-'महर्षि कण्व शकुन्तलाकी विदाईके समय कहते हैं—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् ४। १८)

२-धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः। षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः॥ (ऋक्० ८। ४। २०)

जो राजा ६०-६० हजार गायें एक साथ दान कर सकता है, उसके पास कितनी गायें होंगी?

इस प्रकार ऋग्वेदका अष्टम मण्डल कण्ववंशीय ऋषियोंकी देवस्तुतिमें उपनिबद्ध है। महर्षि कण्वने एक स्मृतिकी भी रचना की है, जो 'कण्वस्मृति' के नामसे विख्यात है।

अष्टम मण्डलमें ११ सूक्त ऐसे हैं, जो 'बालखिल्य-सूक्त' के नामसे विख्यात हैं। देवस्तुतियोंके साथ ही इस मण्डलमें ऋषिद्वारा दृष्टमन्त्रोंमें लौकिक ज्ञान-विज्ञान तथा अनिष्ट-निवारण-सम्बन्धी उपयोगी मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। उदाहरणके लिये '**यत इन्द्र भयामहे०**' (८।६१।१३)—इस मन्त्रका दु:स्वप्न-निवारण तथा कपोलशक्तिके लिये पाठ किया जाता है। सूक्तकी महिमाके अनेक मन्त्र इसमें आये हैं (८।९७।५)। गौकी सुन्दर स्तुति है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। ऋषि गो-प्रार्थनामें उसकी महिमाके विषयमें कहते हैं—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभि:।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

(ऋक्० ८।१०१।१५)

गौ रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, अदितिपुत्रोंकी बहिन और घृतरूप अमृतका खजाना है, प्रत्येक विचारशील पुरुषको मैंने यही समझाकर कहा है कि निरपराध एवं अवध्य गौका वध न करो।

महर्षि याज्ञवल्क्य

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों तथा उपदेष्टा आचार्योंमें महर्षि याज्ञवल्क्यका स्थान सर्वोपरि है। ये महान् अध्यात्म-वेत्ता, योगी, ज्ञानी, धर्मात्मा तथा श्रीरामकथाके मुख्य प्रवक्ता हैं। भगवान् सूर्यकी प्रत्यक्ष कृपा इन्हें प्राप्त थी। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्माजीका अवतार बताया गया है। श्रीमद्भागवत (१२।६।६४)-में आया है कि ये देवरातके पुत्र हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्यके द्वारा वैदिक मन्त्रोंको प्राप्त करनेकी रोचक कथा पुराणोंमें प्राप्त होती है, तदनुसार याज्ञवल्क्य वेदाचार्य महर्षि वैशम्पायनके शिष्य थे। इन्हींसे उन्हें मन्त्रशक्ति तथा वेदज्ञान प्राप्त हुआ। वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्यसे बहुत स्नेह रखते थे और इनकी भी गुरुजीमें अनन्य श्रद्धा एवं सेवा-निष्ठा थी; किंतु दैवयोगसे एक बार गुरुजीसे इनका कुछ विवाद हो गया, जिससे गुरुजी रुष्ट हो गये और कहने लगे—'मैंने तुम्हें यजुर्वेदके जिन मन्त्रोंका उपदेश दिया है, उन्हें तुम उगल दो।' गुरुकी आज्ञा थी, मानना तो था ही। निराश हो याज्ञवल्क्यजीने सारी वेदमन्त्रविद्या मूर्तरूपमें उगल दी, जिन्हें वैशम्पायनजीके दूसरे अन्य शिष्योंने तित्तिर (तीतर पक्षी) बनकर श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लिया अर्थात् वे वेदमन्त्र उन्हें प्राप्त हो गये। यजुर्वेदकी वही शाखा जो तीतर बनकर ग्रहण की गयी थी, 'तैत्तिरीय शाखा' के नामसे प्रसिद्ध हुई।

याज्ञवल्क्यजी अब वेदज्ञानसे शून्य हो गये थे, गुरुजी भी रुष्ट थे; अब वे क्या करें? तब उन्होंने प्रत्यक्ष देव भगवान् सूर्यनारायणकी शरण ली और उनसे प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! हे प्रभो! मुझे ऐसे यजुर्वेदकी प्राप्ति हो, जो अबतक किसीको न मिली हो—

'अहमयातयामयजु:काम उपसरामीति'॥

(श्रीमद्भा० १२।६।७२)

भगवान् सूर्यने प्रसन्न हो उन्हें दर्शन दिया और अश्वरूप धारण कर यजुर्वेदके उन मन्त्रोंका उपदेश दिया, जो अभीतक किसीको प्राप्त नहीं हुए थे—

एवं स्तुत: स भगवान् वाजिरूपधरो हरि:।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादित:॥

(श्रीमद्भा० १२।६।७३)

अश्वरूप सूर्यसे प्राप्त होनेके कारण शुक्लयजुर्वेदकी एक शाखा 'वाजसनेय' और मध्य दिनके समय प्राप्त होनेसे 'माध्यन्दिन' शाखाके नामसे प्रसिद्ध हो गयी। इस शुक्लयजुर्वेदसंहिताके मुख्य मन्त्रद्रष्टा ऋषि आचार्य याज्ञवल्क्य हैं।

इस प्रकार शुक्लयजुर्वेद हमें महर्षि याज्ञवल्क्यजीने ही दिया है। इस संहितामें चालीस अध्याय हैं। आज प्राय: अधिकांश लोग इस वेदशाखासे ही सम्बद्ध हैं और सभी पूजा, अनुष्ठानों, संस्कारों आदिमें इसी संहिताके

मन्त्र विनियुक्त होते हैं। रुद्राष्टाध्यायी नामसे जिन मन्त्रोंद्वारा भगवान् रुद्र (सदाशिव)-की आराधना होती है, वे इसी संहितामें विद्यमान हैं। इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्यजीका लोकपर महान् उपकार है।

इतना ही नहीं, इस संहिताका जो ब्राह्मणभाग 'शतपथब्राह्मण' के नामसे प्रसिद्ध है और जो 'बृहदारण्यक उपनिषद्' है, वह भी महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा ही हमें प्राप्त है। गार्गी, मैत्रेयी और कात्यायनी आदि ब्रह्मवादिनी नारियोंसे जो इनका ज्ञान-विज्ञान एवं ब्रह्मतत्त्व-सम्बन्धी शास्त्रार्थ हुआ, वह भी प्रसिद्ध ही है। विदेहराज जनक-जैसे अध्यात्म-तत्त्ववेत्ताओंके ये गुरुपद्भाक् रहे हैं। इन्होंने प्रयागमें भरद्वाजजीको श्रीरामचरितमानस सुनाया। साथ ही इनके द्वारा एक महत्त्वपूर्ण धर्मशास्त्रका प्रणयन हुआ है, जो 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के नामसे प्रसिद्ध है, जिसपर मिताक्षरा आदि प्रौढ़ संस्कृत-टीकाएँ हुई हैं।

महर्षि अगस्त्य

ब्रह्मतेजके मूर्तिमान् स्वरूप महामुनि अगस्त्यजीका पावन चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा दिव्य है। वेदोंमें इनका वर्णन आया है। ऋग्वेदका कथन है कि मित्र तथा वरुण नामक देवताओंका अमोघ तेज एक दिव्य यज्ञियकलशमें पुञ्जीभूत हुआ और उसी कलशके मध्यभागसे दिव्य तेजःसम्पन्न महर्षि अगस्त्यका प्रादुर्भाव हुआ[1]। पुराणोंमें यह कथा आयी है कि महर्षि अगस्त्य (पुलस्त्य)-की पत्नी महान् पतिव्रता तथा श्रीविद्याकी आचार्य हैं, जो 'लोपामुद्रा' के नामसे विख्यात हैं। आगम-ग्रन्थोंमें इन दम्पतिकी देवी-साधनाका विस्तारसे वर्णन आया है।

महर्षि अगस्त्य महातेजा तथा महातपा ऋषि थे। समुद्रस्थ राक्षसोंके अत्याचारसे घबराकर देवता लोग इनकी शरणमें गये और अपना दुःख कह सुनाया। फल यह हुआ कि ये सारा समुद्र पी गये, जिससे सभी राक्षसोंका विनाश हो गया। इसी प्रकार इल्वल तथा वातापी नामक दुष्ट दैत्योंद्वारा हो रहे ऋषि-संहारको इन्होंने बंद किया और लोकका महान् कल्याण हुआ।

एक बार विन्ध्याचल सूर्यका मार्ग रोककर खड़ा हो गया, जिससे सूर्यका आवागमन ही बंद हो गया। सूर्य इनकी शरणमें आये, तब इन्होंने विन्ध्य पर्वतको स्थिर कर दिया और कहा—'जबतक मैं दक्षिण देशसे न लौटूँ, तबतक तुम ऐसे ही निम्न बनकर रुके रहो।' हुआ ऐसा ही है। विन्ध्याचल नीचे हो गया, फिर अगस्त्यजी लौटे नहीं, अतः विन्ध्य पर्वत उसी प्रकार निम्न रूपमें स्थिर रह गया और भगवान् सूर्यका सदाके लिये मार्ग प्रशस्त हो गया।

इस प्रकारके अनेक असम्भव कार्य महर्षि अगस्त्यने अपनी मन्त्रशक्तिसे सहज ही कर दिखाया और लोगोंका कल्याण किया। भगवान् श्रीराम वनगमनके समय इनके आश्रमपर पधारे थे। भगवान्ने उनका ऋषि-जीवन कृतार्थ किया। भक्तिकी प्रेममूर्ति महामुनि सुतीक्ष्ण इन्हीं अगस्त्यजीके शिष्य थे। अगस्त्यसंहिता आदि अनेक ग्रन्थोंका इन्होंने प्रणयन किया, जो तान्त्रिक साधकोंके लिये महान् उपादेय है।

सबसे महत्त्वकी बात यह है कि महर्षि अगस्त्यने अपनी तपस्यासे अनेक ऋचाओंके स्वरूपोंका दर्शन किया था, इसीलिये ये मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेदके अनेक मन्त्र इनके द्वारा दृष्ट हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १६५ सूक्तसे १९१ तकके सूक्तोंके द्रष्टा ऋषि महर्षि अगस्त्यजी हैं। साथ ही इनके पुत्र दृढच्युत तथा दृढच्युतके पुत्र इध्मवाह भी नवम मण्डलके २५वें तथा २६वें सूक्तके द्रष्टा ऋषि हैं। महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आज भी पूज्य और वन्द्य हैं, नक्षत्र-मण्डलमें ये विद्यमान हैं। दूर्वाष्टमी आदि व्रतोपवासोंमें इन दम्पतिकी आराधना-उपासना की जाती है।

१-सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुंभे रेतः सिषिचतुः समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो ज्ञातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥

इस ऋचाके भाष्यमें आचार्य सायणने लिखा है—'ततो वासतीवरात् कुंभात् मध्यात् अगस्त्यो शमीप्रमाण उदियाप प्रादुर्बभूव। तत एव कुंभाद्वसिष्ठमप्यृषिं जातमाहुः॥'

इस प्रकार कुंभसे अगस्त्य तथा महर्षि वसिष्ठका प्रादुर्भाव हुआ।

मन्त्रद्रष्टा महर्षि वसिष्ठ

वैदिक मन्त्रद्रष्टा आचार्योंमें महर्षि वसिष्ठका स्थान सर्वोपरि है। ऋग्वेदका सप्तम मण्डल 'वासिष्ठ-मण्डल' कहलाता है। इस मण्डलके मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि महर्षि वसिष्ठजी ही हैं। ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं तथा मित्रावरुणके तेजसे इनके आविर्भूत होनेकी कथाएँ पुराणोंमें प्राप्त हैं। इनकी पत्नी देवी अरुन्धती महान् पतिव्रता हैं। सप्तर्षिमण्डलमें महर्षि वसिष्ठके साथ देवी अरुन्धती भी विद्यमान रहती हैं। इनका योगवासिष्ठ ग्रन्थ अध्यात्मज्ञानका मुख्य ग्रन्थ है। महर्षि वसिष्ठकी मन्त्रशक्ति, योगशक्ति, दिव्यज्ञानशक्ति तथा तपस्याकी कोई इयत्ता नहीं। ये क्षमा-धर्मके आदर्श विग्रह हैं। इनका उदात्त दिव्य चरित्र परम पवित्र है।[१]

महर्षि अंगिरा

पुराणोंमें बताया गया है कि महर्षि अंगिरा ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं तथा ये गुणोंमें ब्रह्माजीके ही समान हैं। इन्हें प्रजापति भी कहा गया है और सप्तर्षियोंमें वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा मरीचि आदिके साथ इनका भी परिगणन हुआ है। इनके दिव्य अध्यात्मज्ञान, योगबल, तपःसाधना एवं मन्त्रशक्तिकी विशेष प्रतिष्ठा है। इनकी पत्नी दक्षप्रजापतिकी पुत्री स्मृति (मतान्तरसे श्रद्धा) थीं, जिनसे इनके वंशका विस्तार हुआ।

इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्निकी अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जलमें रहकर तपस्या कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि अंगिराके तपोबलके सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है तो वे दुःखी हो अंगिराके पास गये और कहने लगे—'आप प्रथम अग्नि हैं, मैं आपके तेजकी तुलनामें अपेक्षाकृत न्यून होनेसे द्वितीय अग्नि हूँ। मेरा तेज आपके सामने फीका पड़ गया है, अब मुझे कोई अग्नि नहीं कहेगा।' तब महर्षि अंगिराने सम्मानपूर्वक उन्हें देवताओंको हवि पहुँचानेका कार्य सौंपा। साथ ही पुत्ररूपमें अग्निका वरण किया। तत्पश्चात् वे अग्निदेव ही बृहस्पति-नामसे अंगिराके पुत्ररूपमें प्रसिद्ध हुए। उतथ्य तथा महर्षि संवर्त भी इन्हींके पुत्र हैं। महर्षि अंगिराकी विशेष महिमा है। ये मन्त्रद्रष्टा, योगी, संत तथा महान् भक्त हैं। इनकी 'अंगिरा-स्मृति' में सुन्दर उपदेश तथा धर्माचरणकी शिक्षा व्याप्त है।

सम्पूर्ण ऋग्वेदमें महर्षि अंगिरा तथा उनके वंशधरों तथा शिष्य-प्रशिष्योंका जितना उल्लेख है, उतना अन्य किसी ऋषिके सम्बन्धमें नहीं है। विद्वानोंका यह अभिमत है कि महर्षि अंगिरासे सम्बन्धित वेश और गोत्रकार ऋषि ऋग्वेदके नवम मण्डलके द्रष्टा हैं। नवम मण्डलके साथ ही ये आंगिरस ऋषि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अनेक मण्डलोंके तथा कतिपय सूक्तोंके द्रष्टा ऋषि हैं। जिनमेंसे महर्षि कुत्स, हिरण्यस्तूप, सप्तगु, नृमेध, शंकपूत, प्रियमेध, सिन्धुसित्, वीतहव्य, अभीवर्त, आङ्गिरस, संवर्त तथा हविर्धान आदि मुख्य हैं।

ऋग्वेदका नवम मण्डल जो ११४ सूक्तोंमें उपनिबद्ध है, 'पवमान-मण्डल'के नामसे विख्यात है। इसकी ऋचाएँ पावमानी ऋचाएँ कहलाती हैं। इन ऋचाओंमें सोम देवताकी महिमापरक स्तुतियाँ हैं, जिनमें यह बताया गया है कि इन पावमानी ऋचाओंके पाठसे सोम देवताओंका आप्यायन होता है।

१-महर्षि वसिष्ठका विशेष विवरण इस विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्या २१ पर दिया गया है। विशेष जानकारीके लिये वहाँ अवलोकन करना चाहिये। यहाँ प्रसंगोपात्त क्रममें उल्लेखमात्र किया गया है।

महाशाल महर्षि शौनकका वैदिक वाङ्मयमें विनय एवं स्वाध्यायपूर्ण चारित्र्य

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

शुभ चरित्रके लिये चारित्र्यज्ञान आवश्यक है। महर्षि शौनक इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। मुण्डकोपनिषद् (१। १। ३) तथा परब्रह्मोपनिषद् (१। १) आदिमें इन्हें महाशाल-विश्वविद्यालय आदिका संचालक या कुलपति कहा गया है।[1] भागवत (१। ४। १)-में इनका बार-बार उल्लेख आया है। वहाँ इन्हें कुलपतिके साथ 'बह्वृच' (ऋग्वेदाचार्य) भी कहा गया है—

वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत्।[2]

ब्रह्मपुराण (११। ३४), विष्णुपुराण (४। ८। ६), हरिवंशपुराण (१। ३१) एवं वायुपुराण (२। ३०। ३-४)-के अनुसार ये महर्षि गृत्समदके पुत्र हैं एवं चातुर्वर्ण्यके विशेष प्रवर्तक हुए हैं। भागवत, महाभारत आदिमें जो इन्हें 'बह्वृच' कहा गया है, उससे इनका ऋग्वेदका आचार्यत्व तथा उसके व्याख्यानसे विशेष सम्बन्ध दीखता है। इन्होंने उसकी शाकल एवं बाष्कल शाखाओंको परिष्कृत रूप भी दिया और ये अथर्ववेदके द्रष्टा भी हैं, अतः उसकी मुख्य संहिताको शौनकसंहिता कहते हैं। ऋग्वेदके दूसरे मण्डलके द्रष्टा भी ये ही हैं। ऋष्यनुक्रमणी तथा ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलमें सर्वत्र इन्हें पहले आङ्गिरस और बादमें भार्गव होना कहा है।[3] इनके नामसे रचित ग्रन्थ बहुसंख्यक हैं—ऋक्प्रातिशाख्य, चरणव्यूह, बृहद्देवता, अथर्ववेदके ७२ परिशिष्ट, छन्दोऽनुक्रमणी, ऋष्यनुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी आदि; वेदोंके विस्तृत ऋग्विधान, सामविधान, यजुर्विधान, शौनकस्मृति, आयुष्यहोम, उदकशान्ति, संन्यासविधि, स्वराष्टक आदि ग्रन्थ तथा बृहत्सर्वानुक्रमणी, पादविधान, चरणव्यूह, शौनकस्मृति आदि भी इन्हींकी रचनाएँ हैं। अथर्वप्रातिशाख्यका तो दूसरा नाम ही शौनकीय चातुराध्यायिका है। पुरुषसूक्तपर इनका ही भाष्य सर्वोत्तम मान्य है (द्रष्टव्य, वाजसनेयिसंहिता ३१। १ का उवटभाष्य)।

मत्स्यपुराणके अनुसार वास्तुशास्त्रके भी ये ही प्रमुख प्रणेता हैं। शौनकगृह्यसूत्र एवं परिशिष्टसूत्र भी इन्हींकी रचनाएँ हैं। आश्वलायन इन्हें अपने गृह्यसूत्र (४। ९। ४५)-के अन्तमें दो बार—'**नमः शौनकाय, नमः शौनकाय**' कहकर गुरुरूपमें स्मरण करते हैं। 'वंशब्राह्मण' इन्हें कात्यायनका भी गुरु बतलाता है। इसके अतिरिक्त शौनकीय कल्प, शौनकीय शिक्षा आदि भी इनके ग्रन्थ हैं। इनके सभी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

पाणिनिसूत्र[4] '**शौनकादिभ्यश्छन्दसि**' (४। ३। १०६)-की काशिकावृत्तिमें एक 'शौनकीय शिक्षा' का भी उल्लेख है और इनके द्वारा उक्त शाखासूत्रोंके अध्ययन करनेवालोंके लिये '**वाजसनेयिनः**' की तरह '**शौनकिनः**' पद कहनेकी बात कही गयी है। इस गणमें वाजसनेय, कठ, तलवकार आदि १५ शब्दोंको पीछे रखकर शौनककी विशेष महिमा दिखायी गयी है। 'विकृतिकौमुदी'[5] तथा षड्गुरुशिष्यद्वारा बृहत्सर्वानुक्रमणी वृत्तिमें इनकी विस्तृत चर्चा है। ये शतपथ-ब्राह्मण, बृहदारण्यक एवं गोपथ आदिमें सर्वत्र शास्त्रार्थजयी

१—मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नपानादिना भरेत्। अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥ (पद्मपु०, कूर्मपुराण)

२—महाभारत (१। १। १)-में भी ऐसा ही कहा है—शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे।

३—य आङ्गिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत्····· द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। (ऋग्वेदीय सायणभाष्य-भूमिका)

पुराणोंमें भी—'शुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकः·····। पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः॥ (ब्रह्मपु० ११। ३२-३३, ब्रह्माण्ड० २। ६७) ऐसा ही कहा गया है।'

४—पाणिनीय अष्टाध्यायी (४। १। १०४)-के 'विदादिगण' में 'शुनक' पाठ है। उससे गोत्रापत्यमें शौनक शब्द बनता है, इस प्रकार शुनक इनका गोत्र मानना चाहिये। बृहदारण्यकोपनिषद् (शा० भा० ४। ३। ५)-में ये कपिगोत्रज हैं। पाणिनि (४। १। १०२, ३। १०६) आदि प्रायः सभी ऋषिगणोंमें इनका उल्लेख है।

५—यह 'विकृतिवल्ली' की गङ्गाधरभट्टरचित टीका है।

होते हैं। व्याडिको इनका प्रधान शिष्य कहा गया है। व्याकरण-महाभाष्य (१।२।६४, ६।२।२९)-के अनुसार व्याडिने लक्षश्लोकीय 'संग्रह' नामक व्याकरण-ग्रन्थकी रचना की थी। इन्होंने—'**गणानां त्वा०**' मन्त्रमें सत्य, वेद और जगत्‌के स्वामी होनेसे 'ब्रह्मणस्पति-बृहस्पति' की यथा नाम तथा गुणकी चरितार्थता मानी है—'**ब्रह्म वाग् ब्रह्म सत्यं च ब्रह्म सर्वमिदं जगत्। पातारं ब्रह्मणस्तेन बृहस्पतिरितीरितः**' (बृहद्देवता २। ३९-४० तथा निरुक्त १०।१।१२)।

भागवतमें शतानीकको याज्ञवल्क्यका शिष्य कहा गया है। उन्होंने तीनों वेदोंका ज्ञान याज्ञवल्क्यसे प्राप्त किया था, किंतु कर्मकाण्ड एवं शास्त्रका ज्ञान महर्षि शौनकसे ही प्राप्त किया था। इससे इनके दीर्घजीवित्व एवं धनुर्विद्यादिके पाण्डित्यका भी परिचय मिलता है—

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात् त्रयीं पठन्।
अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात् परमेष्यति॥

(श्रीमद्भा० ९। २२। ३८)

इतना होनेपर भी आचार्य शौनककी विनयपूर्ण चरित्र-शीलता एवं जिज्ञासा देखते बनती है। इसीलिये 'प्रपन्नगीता'में ये द्वादशमहाभागवतोंमें भी ८वीं संख्यापर परिगणित हैं। ये १८ पुराणों, उपपुराणों तथा महाभारत आदिको उग्रश्रवा, लोमहर्षणादिसे श्रवण करते हैं। अट्ठारह पुराणोंमें उनके प्रश्न, उनकी भगवद्भक्ति आदि अद्भुत हैं। भागवतमें वे कहते हैं कि यदि भगवच्चर्चासे अथवा भक्तोंकी चर्चासे युक्त हो, तभी आप यह कथा कहें, अन्य बातोंसे कोई लाभ नहीं, क्योंकि उसमें आयुका व्यर्थ अपव्यय होता है—

तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्॥
अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्।
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः॥

(श्रीमद्भा० १। १६। ५-६)

वे श्रीभगवान्‌की कथा-श्रवण-कीर्तनसे रहित कान-मुँह-जीभको साँपका बिल और मेढककी जीभ कहते हैं (श्रीमद्भा० २।३।२०)। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी—

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥

—आदिमें इन्हींके भाव दिये हैं। वैसे ये नैमिषारण्यवासी ८८ हजार ऋषियोंके नेता या कुलपति थे। यह बात सत्यनारायण-कथासे लेकर सभी पुराणोंमें बार-बार आती है। भविष्यपुराणमें ये सभी ८८ हजार ऋषियोंको लेकर 'म्लेच्छाक्रान्त नैमिषारण्य' को छोड़कर बदरिकाश्रममें जाकर कथाश्रवणका प्रबन्ध करते दीखते हैं। इस प्रकार स्वाध्यायचरित्रशील होनेके साथ ये बड़े विनयी, सभी देवताओंके उपासक तथा विष्णुभक्त भी रहे हैं। 'बृहद्देवता' के ध्यानपूर्वक अवलोकन-आलोचन करनेसे इनके कठोर तप, ब्रह्मचर्य एवं विशाल वैदिक ज्ञानका परिचय मिलता है।

पुराणों, धर्मशास्त्रों आदिके समान वैदिक ग्रन्थ भी असंख्य हैं। परंतु चारित्र्यके अनुष्ठानके लिये इनका अधिकाधिक स्वाध्याय, ज्ञानाप्ति आवश्यक है। यहाँ केवल शौनकरचित ग्रन्थोंका निर्देश हुआ है। याज्ञवल्क्य, व्यास, कात्यायन, जैमिनि, भारद्वाज, विश्वामित्र आदिके भी ग्रन्थ इसी प्रकार असंख्य हैं। बृहद्देवताको देखनेसे स्पष्ट होता है कि शौनकने इन सभी-के-सभी ग्रन्थों, अनेक व्याकरणों तथा अनेक निरुक्तोंका भी अवलोकन कर इसकी रचना की थी। महाभारत-वनपर्वके दूसरे अध्यायमें इन्हें सांख्ययोग-कुशल भी कहा गया है। वहाँके इनके चरित्र-सम्बन्धी उपदेश बड़े ही सुन्दर हैं। वहाँ ये युधिष्ठिरसे कहते हैं कि आसक्तिके कारण दुःख, भय, आयास, शोक-हर्ष सभी उपद्रव आ घेरते हैं। अतः रागको छोड़ विरक्त बनना चाहिये, रागसे तृष्णा उत्पन्न होकर प्राणान्तक रोग बन जाती है। अर्थ भी घोर अनर्थकारी है। उसमें दर्प, अनीति, कार्पण्य आदि अनेक दोष प्रकट होते हैं, अतः तृष्णादिका त्याग करके संतोषका आश्रय लेना चाहिये। इसीमें परम सुख है—

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम्।
तस्मात् संतोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः॥

(महा० ३। २। ४६)

प्रायः ये ही बातें योगवासिष्ठ, भागवत, स्कन्दपुराण (माहेश्वरखण्डके कुमारिकाखण्ड)-में कही गयी हैं।

वस्तुतः इन शौनक, जैमिनि, व्यासादि ऋषियोंने स्वाध्यायादिके द्वारा लोकरक्षा, धर्मरक्षा, सदाचार एवं चरित्ररक्षाके लिये अपना सारा जीवन ही लगा दिया था। यही आज भी हमारे लिये अवश्यानुष्ठेय-कर्तव्य है।